इकाई 1. भारवि का व्यक्तित्व एवं कृतियों का विस्तृत परिचय

इकाई की रूपरेखा

में और अपने ससुर की गायें नित चराया करते थे। इनकी धर्मपत्नी भी वहीं थी। कार्यवश पत्नी ने इनसे पैसे माँगे , परन्तु उस समय भारवि के पास पैसे कहाँ ? झट से इन्होंने अपना वह प्रसिद्ध पद्य पत्नी को किसी गुणग्राही साहूकार के पास गिरवी रखने के लिए दिया वह नीतिमय पद्य था।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक: परमपदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणां गुणलुब्धा: स्वयमेव सम्पद: ।।

पद्य के मर्म को समझने वाले किसी महाजन ने बहुत सा द्रव्य देकर इस पद्य को खरीद लिया और अपने शयनागार के सामने तख्ती पर इसे लिखकर लटका दिया। कार्यवश वह विदेश गया , वहाँ उसे कई वर्षो तक ठहरना पड़ा। जब लौटकर रात को घर आया , तब उसने अपनी पत्नी के पास ही किसी वयस्क पुरुष को सोते हुए पाया। पत्नी के कुव्यवहार से मर्माहत हो उसने सोते समय ही दोनों को मार डालने की ठानी परन्तु घर में घुसने के समय उसका माथा सहसा विद्धीत न क्रियाम् . वाली तख्ती से टकराया। उसने श्लोक पढ़ा- सहसा करने से रुक गया , पत्नी को जगाया। तब उसके आश्चर्य की सीमा न रही , जब उसने वयस्क पुरुष को अपना वहीं प्यारा इकलौता पुत्र पाया। कल्पित अनिष्ट की आशंका से उसका अंग सिहर गया उसने भारवि को बुलवाया , बड़ा सम्मान किया और पत्नी तथा पुत्र की जीवन रक्षा वाले श्लोक के रचयिता के सामने अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की। भारवि परम शैव थे। यह तथ्य किरातार्जुनीय के शैव माहात्म्य प्रतिपादक , कथानक तथा अवन्तिसुन्दरी कथा के उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है। यह भी बात ज्ञात होती है कि निरन्तर राजसाहचर्य के कारण यह राजनीति के बड़े भारी पण्डित बन गए थे। राजशेखर ने लिखा है कि कालिदास तथा भतृमेष्ठ की तरह उज्जयिनी में भारवि की भी परीक्षा ली गई थी। जिसमें उत्तीर्ण होने पर इनके यश की वृद्धि हुई थी।

1. श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा
इह कालिदासमेष्ठावत्रामररुपसूरभारवयः।
हरिश्चन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्।।

दीपशिखा कालिदास की भाँति भारवि की भी ‘ आतपत्र भारवि ’ संबा थी। काव्य रसिकों ने जिस उक्ति के उपर मुग्ध होकर इन्हें इस विरुद से विभूषित किया था , वह इस प्रकार है --

उत्फुल्लस्थलनलिनी वनादमुष्माउदधृत सरसिजसम्भवः परागः।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादाधन्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम्।। किरात 5/39।।

स्थल कमलिनी के वन के विकसित हैं। उनसे पीत पराग झर रहे हैं। हवा झोंके से बह रही है। इससे पराग उड़कर आकाश में फैला जा रहा है। इस प्रकार कमल का पराग सुवर्ण-निर्मित छत्र की शोभा धारण कर रहा है। आकाश में फैला हुआ पराग सुवर्ण के बन छत्र की तरह जान पड़ता है।

श्लोक का भाव बिल्कुल अनुपम है, एकदम नवीन है। काव्य प्रेमियों को कवि का भाव इतना पसन्द आया कि उन्होंने भारवि को ‘ आतपत्र भारवि ’ ही कहना प्रारम्भ कर दिया।

किरातार्जुनीयम् काव्य का कथानक

भारवि की अमरकीर्ति का आधार उनके सुप्रसिद्ध महाकाव्य " किरातार्जुनीय " पर अवलम्बित है। इस काव्य का मूल स्रोत महाभारत के वन पर्व से लिया गया है। इन्द्र तथा शिव को प्रसन्न करने के लिए की गयी अर्जुन की तपस्या को आधार बनाकर कवि ने 18 सर्गों में इस महाकाव्य का सृजन किया है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है --

प्रथम सर्ग - द्यूत क्रीड़ा में हारने के पश्चात् युधिष्ठिर अपने अनुजों के साथ द्वैतवन में रहने लगे, किन्तु यहाँ भी वे दुर्योधन की ओर से चिन्तित हैं। अतः वे दुर्योधन की प्रजापालन सम्बन्धी नीति को जानने के लिए एक वनेचर दूत को नियुक्त करते हैं। ब्रह्मचारी बना हुआ वह वनेचर दूत लौटकर दुर्योधन के शासन की पूर्ण जानकारी युधिष्ठिर को देता है और साथ ही यह संकेत करता है कि दुर्योधन द्यूत में जीती हुई पृथ्वी को नीति से भी जीत लेने के प्रयत्न में है। अभीष्ट जानकारी देने के पश्चात् वह चला जाता है। द्रौपदी युधिष्ठिर को उनके पूर्व भुक्त ऐश्वर्य एवं पराक्रम का स्मरण कराती है। साथ ही शत्रुओं के प्रति असामयिक उदासीन एवं क्षमाशील रहने से होने वाली अनुजों की दयनीय दशा की ओर ध्यान आकर्षित करती हुई युधिष्ठिर को उत्तेजित करती है तथा उसकी शान्तिपूर्ण नीति की भर्त्सना करती है।

द्वितीय सर्ग - द्रौपदी के विचारों का समर्थन करते हुए भीम कहते हैं कि हे प्रजानाथ आपके अनुजों की पराक्रमशाली भुजाएँ फिर कब सफल होंगी ? उनके पराक्रम को कौन सह सकता हैं ? किन्तु युधिष्ठिर भी उनके उत्तेजित वचनों को सयुक्तिक नीतिमय उपेदेशों से शान्त कर देते हैं। इसी सर्ग में भगवान व्यास का आगमन होता है।

तृतीय सर्ग - युधिष्ठिर के व्यास जी से आगमन का कारण पूछने पर व्यासजी ने पाण्डवों के विजय लाभ का ध्यान रखते हुए उत्तर दिया - पराक्रम से ही आपको पृथ्वी पर अधिकार करना होगा।आपके शत्रु आपसे अधिक बलशाली हैं। अतः शत्रु से बढ़ने के लिए आपको उपाय करना आवश्यक है।जिस मन्त्र विद्या से अर्जुन तपस्या करके पाशुपतास्त्र प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे और भीम प्रभूति वीरों का नाश करने में समर्थ होंगे। वह मंत्र विद्या प्रदान करने के लिए मैं आज उपस्थित हुआ हूँ। बाद में अर्जुन को उक्त मंत्र विद्या प्रदान कर दिव्यास्त्र प्राप्ति के लिए , इन्द्र की तपस्या करने के लिए कहते हैं। साथ ही मार्ग निर्देशन करने के लिए एक यक्ष को आदेश देकर अन्तर्हित हो जाते हैं। व्यास के भेजे यक्ष के साथ अर्जुन तपस्या करने के हेतु इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचता है। यक्ष अर्जुन को तप और तप में होने वाले विघ्नों के बारे में कहता है और आशीर्वाद देकर चला जाता है। वनेचरों के मुख से अर्जुन की कठोर तपस्या का वृतान्त सुनकर इन्द्र भयभीत होता है और उसके तप में विघ्न डालने के लिए अप्सराओं को भेजता है , परन्तु जितेन्द्रिय अर्जुन के प्रति उन अप्सराओं के सभी प्रयत्न विफल हो जाते हैं। अर्जुन के तपानुष्ठान देखने के लिए मुनिवेश धारण कर इन्द्र उपस्थित होता है। अनेक युक्ति प्रयुक्ति से समझाने पर भी अर्जुन के तपानुष्ठान न छोड़ने पर प्रसन्नता से इन्द्ररुप में प्रकट होकर अर्जुन को

शिव की तपस्या करने का उपदेश देता है। अर्जुन पुनः तपस्या प्रारम्भ करता है। एक मायावी दैत्य अर्जुन को मारने के लिए वराहरुप धारण करता है। इस तथ्य को जानकर शंकर अर्जुन की रक्षा करने के हेतु किरात का मायावी रुप धारण करते हैं। भगवान शंकर वराह को लक्ष्य कर बाण चलाते हैं और अर्जुन भी उसी समय बाण चलाता है परिणामतः दोनों के बाणों के लगने से वह सूकर कटे वृक्ष की तरह गिरकर पंचतत्त्व को प्राप्त होता हैं बाद में अर्जुन अपने बाण को लेना चाहता है। और इस पर किरात तथा अर्जुन का वाद-विवाद चलता है। यह विवाद पंचदश सर्ग में युद्ध का रुप धारण करता है। युद्ध में प्रथम शिव और अर्जुन अस्त्र-शस्त्रों से युद्व करते है। पश्चात् दोनों बाहुयुद्ध पर तैयार होते हैं। अर्जुन की वीरता तथा एकनिष्ठता से शंकर प्रकट होते हैं और फलतः अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति होती है। ' जाओ शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो ' इस प्रकार शंकर के द्वारा आशीर्वाद प्राप्त कर, अर्जुन जो उनके चरण कमलों में नत था ,देवताओं द्वारा प्रशंसित होते हुए , उसने महान् विजयलक्ष्मी के साथ अपने घर पहुँचकर अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को प्रणाम किया। यहीं पर काव्य समाप्त होता है। आदर्शकाव्य (महाभारत) का कथानक अत्यन्त सरल है। किन्तु भारवि के कवि ने अपनी कल्पना व पाण्डित्य से नाटकीय संवादों, रमणीय एवं कलापूर्ण वर्णनों से 4 या 5 सर्ग की कथासामग्री को विस्तारपूर्वक 18 सर्गो में फैलाया है। यहाँ तक कि कथा की गति अवरुद्ध हो जाती है और 6 सर्गो के पश्चात् कवि पुनः छूटे हुए इतिवृत्त के सूत्र को पकड़ने में समर्थ होता। यद्यपि ये प्रसंग अर्थात् शरद ऋतु इतिवृत्त के सूत्र को पकड़ने में समर्थ होता है। यद्यपि ये प्रसंग अर्थात् शरद ऋतु वर्णन (सर्ग 4),हिमालय वर्णन (सर्ग 5), इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन की तपस्या में विघ्न डालने के लिए इन्द्रप्रेषित अप्सराओं के गमन का वर्णन (सर्ग 6) , गन्धर्वों और अप्सराओं के क्रीड़ादि का वर्णन (सर्ग 7,8) ,सांयकाल आदि का वर्णन (सर्ग 9) , अर्जुन को आकर्षित करने के लिए अप्सराओं का आगमन आदि (सर्ग 10) , कथोद्धूत दिखाई न देकर लक्षणग्रंथोक्त नियमों की पूर्ति करने के लिए ऊपर से लादे हुए प्रतीत होते हैं , तथापि इनके नियोजन उद्देश्य विद्यमान हैं।

किरातार्जुनीयम् का महाकाव्यत्व

आचार्य दण्डी ने महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार बतलाया है --

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आषीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देश वापि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम्।
चतूर्वर्गफलायत्त चतुरोदात्तनायकम्॥
नगरार्णवषैलर्तु चन्द्‌रार्कोदयवर्णनैः। इत्यादि।

भारवि का काव्य सौष्ठव

महाकवि भारवि अलंकृत काव्य शैली के जन्मदाता हैं। इन्होंने संस्कृत साहित्य में किरातार्जुनीयम् ' महाकाव्य ने अपने प्रशस्त गुणों के कारण साहित्य में अपना विशिष्ट पद प्राप्त किया है। संस्कृत के महाकाव्यों की ' बृहत्त्रयी ' (किरात , शिशुपाल वध और नैषध) में इसका

प्रमुख स्थान है । समस्त संस्कृत साहित्य में किरातार्जुनीय जैसा ओज प्रधान उग्रकाव्य नहीं मिलता है । उसमें कुल 18 सर्ग हैं। वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण से इसका प्रारम्भ होता है । इसका कथानक महाभारत की एक प्रसिद्ध घटना के आधार पर निबद्ध हुआ है और यह चतुवर्ग की प्राप्ति में सहायक है । किरात का नायक अर्जुन धीरोदात्त है। बीच के कई सर्गों में भारवि ने महाकाव्य के लक्षण के अनुसार ऋतु, पर्वत, सूर्यास्त,जलक्रीड़ा आदि का वर्णन करके काव्य अतिशय विस्तार कर दिया है । पूरा चौथा सर्ग शरद ऋतु, पंचम हिमालय पर्वत, षष्ठ युवति प्रस्थान, अष्टम सुरांगना विहार तथा नवम सुरसुन्दरी सम्भोग के वर्णन में रचित है । किरात का प्रधान रस वीर है । इसकी अभिव्यक्ति में कवि को अभूतपूर्व सफलता मिली है । इसमें श्रृंगार तथा अन्य रस गौण रुप में वर्णित हैं । भाषा सर्वत्र अलंकृत है, इसी प्रकार भावों की अभिव्यंजना भी है। छन्द गेय और सुन्दर है । सर्गों में विविध घटनाओं का संयोजन है । किरातार्जुनीयम का प्रारम्भ ' श्री ' शब्द से हुआ है । इसी प्रकार प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में ' लक्ष्मी ' शब्द का प्रयोग किया गया है । अतः यह महाकाव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। किरातार्जुनीयम् पद का विग्रह इस प्रकार किया जा सकता है -- किरातश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ तौ अधिकृत्य कृतं काव्यम् किरातार्जुनीयम् अधिकृत्य कृते ग्रन्थे सूत्र से यहाँ ' छ ' प्रत्यय हुआ है तथा ' छ ' को आयनेय0 अत्यादि सूत्र से ईय हो गया है ।

अपनी रचना से एक सर्वथा नवीन एवं काव्य शैली को जन्म दिया, जिसे अलंकृत काव्य शैली कहा जाता है । इनके बाद होने वाले माघ आदि कवियों ने इनकी काव्य शैली का अनुकरण किया है । किरातार्जुनीय महाकाव्य पर काव्यशास्त्रीय दृष्टि से निम्नलिखित तत्त्वों के आधार पर विचार किया जा सकता है --

(1) महाकाव्य का नायक - इस महाकाव्य का नायक निःसन्देह अर्जुन ही है, क्योंकि इस ग्रन्थ का नाम किरातार्जुनीयम् है । जिसका विग्रह इस प्रकार है – किराताश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ तौ अधिकृत्य कृतम् काव्यम् किरातार्जुनीयम् । इस ग्रन्थ के नामकरण से ज्ञात होता है के किराता और अर्जुन इस महाकाव्य के प्रमुख पात्र हैं , लेकिन काव्य प्रयोजन पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि दिव्यास्त्र प्राप्ति रुपी फल अर्जुन को ही प्राप्त होता है । अतः अन्तिम फल प्राप्ति अर्जुन को होने से अर्जुन ही इसका मुख्य नायक है । किरातार्जुनीयम् ग्रन्थ के टीकाकार श्री चित्रभानु इस महाकाव्य का नायक युधिष्ठिर को मानते हैं और अपना मत पुष्ट करने हेतु तर्क देते हैं कि युधिष्ठिर ही प्रथम सर्ग में उपस्थित रहते हैं। मध्य मे भी कवि ने अर्जुन द्वारा युधिष्ठिर की ही प्रतिष्ठा कराई है और अन्त में भी अर्जुन दिव्यास्त्र की प्राप्ति कर उन्हीं के चरणों में नतमस्तक होते हैं । विजय भी युधिष्ठिर को ही प्राप्त होती है । अर्जुन की दिव्यास्त्र प्राप्ति युधिष्ठिर की फलप्राप्ति रुप विजय का साधन है। अतः काव्य का नायक युधिष्ठिर को ही मानना चाहिए । लेकिन इसका मत समीचीन प्रतीत नहीं होता । महाकाव्यकार भारवि का मन्तव्य भी यही सूचित करता है कि काव्य का नायक अर्जुन ही है , क्योंकि टीकाकार मल्लिनाथ जी ने स्पष्ट कहा है कि इस काव्य का नायक मध्यम पाण्डव अर्थात् अर्जुन ही है। उसी के उत्कर्ष का इसमें वर्णन है और दिव्यास्त्र प्राप्तिरुप फल भी अर्जुन को प्राप्त होता है। निष्कर्षतः अर्जुन ही इस

महाकाव्य का नायक है।

प्रथम सर्ग

नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशज
स्तस्योत्कर्षकृतेऽनुवर्ण्यचरितो दिव्यः किरातः पुनः ।
श्रृंगारादिरसोऽयमत्र विजयी वीरप्रधानो रसः
शैलाद्यानि च वर्णितानि बहुशो दिव्यास्त्रलाभः फलम् ।।

(2) चरित्र चित्रण - पात्रों के चित्रण में भी भारवि उच्चकोटि के कवि हैं। इसका चरित्र चित्रण अतिशय प्रभापूर्ण है। अपमान की धधकती ज्वाला में जलती हुई बिखेरे केशों वाली द्रौपदी, सागर में उठे हुए तूफान की तरह प्रचण्ड पराक्रमी भीम, शान्ति एवं सौम्यता की युधिष्ठिर ,नख से शिख तक वीरता एवं स्फूर्ति से लबालब भरे हुए वीरवर अर्जुन -ये सभी प्रमुख पात्र बड़ी सजीवता के साथ कवि के द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। व्यास, गुप्तचर, दूत आदि गौण पात्र भी वास्तविक प्रतीत होते हैं। इस पुस्तक का संबंध मात्र प्रथम सर्ग से है। अतः सम्पूर्ण पात्रों के सम्पूर्ण जीवन चरित पर जो कि 18 सर्गो में विस्तृत है प्रकाश न डालकर मात्र प्रथम सर्ग में जो पात्र रुप आये हैं उनका चरित्र चित्रण इस प्रकार है।

(1) युधिष्ठिर - प्रथम सर्ग में जो आये हैं, उनमें युधिष्ठिर प्रमुख हैं। वैसे समग्र काव्य की दृष्टि से एवं टीकाकार मल्लिनाथ की दृष्टि में काव्य के नायक युधिष्ठिर नहीं अपितु मध्यम पाण्डव अर्जुन ही है, किन्तु हम प्रथम सर्ग के परिप्रेक्ष्य मे युधिष्ठिर को नायक मानते है। युधिष्ठिर के चरित्र में अनेक विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं। वे स्वभाव से धीर एवं प्रकृति से गम्भीर हैं, वे किसी भी निर्णय विचार-विमर्श के पश्चात् गंभीरतापूर्वक लेते हैं, वे कुशल राजनीतिज्ञ हैं। राजनीति के तत्वों कर पूर्ण ज्ञान रखते हैं। जैसा कि हम प्रथम सर्ग में देखते हैं वे वनवास की अवधि में वेशधारी गुप्तचर को दुर्योधन का भेद लेने हेतु भेजते हैं, शत्रु से युद्धकरने के पूर्व वे उसकी सम्पूर्ण गतिविधियों को जान लेना चाहते हैं। **(श्रियः कुरुणामधिपस्य पालनीं॰) 1/1**

उनके गुप्तचर योग्य कर्मठ एवं विवेकशील हैं तथा स्वामीके हित को सर्वोपरि मानने वाले हैं, लेकिन युधिष्ठिर भी शिष्टाचार में निपुण हैं। वे स्वामिभक्त भृत्यों का सम्मान करते हैं। इसी कारण सम्पूर्ण वृतान्त निवेदन करने के पश्चात् वे वनेचर को पुरस्कृत करते हैं।

(इतीरायित्वा गिरमात्तसात्क्रिये॰) 1/26

युधिष्ठिर अत्यन्त प्रभावशाली हैं यद्यपि वे वन में निवास कर रहे हैं, सैन्य शक्ति व धन से रहित हैं, तथापि दुर्योधन जो राज्य सिंहासनारुढ़ हैं, धन व सैन्यशक्ति से सम्पन्न होते हुए भी सदैव उनसे आशंकित रहता है। युधिष्ठिर का नाम सुनते ही दुर्योधन व्यथित होकर नतानन हो जाता है। " **तवाभिधानात् व्यथते नताननः " (1/24)** युधिष्ठिर का व्यक्तित्व त्यागी एवं तपस्वी के रूप में व्यक्त हुआ है। वे शान्ति नीति के समर्थक, धर्म मर्यादा के पालक, न्याय एवं उत्तम मार्ग पर चलने वाले एवं सहनशील हैं। वे प्रतिशोध की भावना से रहित हैं। यही कारण है कि वे द्रौपदी के युद्ध उत्साहवर्द्धक एवं उपालम्भपूर्ण वचनों को सहानुभूति एवं स्नेह के साथ सुनते हैं और

युक्तियुक्त शब्दों में अपनी नीति समझा देते हैं और समय की प्रतीक्षा करने हेतु परामर्श देते हैं। युधिष्ठिर भाइयों में भी सम्मान्य हैं, इसी कारण उनके अतुल पराक्रमी भाई भी कष्ट सहते हैं और उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। युधिष्ठिर धर्मराज हैं यही कारण है कि द्रौपदी बराबर उन्हें उद्बुद्ध करना चाहती है, उनकी शान्ति को कायरता का प्रतीक मानती हैं वह उन्हें सन्धि भंग करने हेतु प्रेरित करती है, लेकिन युधिष्ठिर अपनी मर्यादा का पालन करते हैं और न्यायोचित मार्ग का उल्लंघन नहीं करते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत रचना में युधिष्ठिर के चरित्र की अन्य विशेषताओं की अपेक्षा राजनीतिक परिपक्वता को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वह भीम और द्रौपदी की बात पूर्ण तन्मयता से सुनता है, उनके उचित सुझावों की प्रशंसा भी करता है , किन्तु उन्हें धैर्यपूर्वक विचार करके निर्णय लेता है। इस प्रकार युधिष्ठिर के व्यक्तित्व में हमें राजनीतिक प्रौढ़ता, सफलता के प्रति अपेक्षित प्रयत्नशीलता, आवेश रहित, संतुलित दृष्टि और नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था आदि गुण दृष्टिगोचर होते हैं।

(2) द्रौपदी - द्रौपदी इस महाकाव्य की नायिका है, अतः द्रौपदी के चरित्रांकन में कवि ने विशेष सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। यद्यपि द्रौपदी एक वीर क्षत्राणी है तथापि कौरवकृत अपमान से मर्माहत असीम धैर्य एवं सहनशीलता की प्रतिमूर्ति है। यही कारण है कि उसके हृदय में दुर्योधन के विरुद्व प्रतिशोध की भीषण ज्वाला विद्यमान है। जब वह युधिष्ठिर के मुख से किराता द्वारा कहे गये दुर्योधन की उन्नति के समाचारों को सुनती है तो अत्यन्त व्यग्र हो उठती है और अपने आवेश को रोक नहीं पाती। अतः वह अपने लिए निरस्तनारीसमयादुराधयः कहकर भूमिका बनाकर बोलती है। वह पुरुषों के अधिकार तथा क्षत्रिय के स्वाभिमान को जानती है, अतः उनको चुनौती नहीं देती; अपितु पूर्ण विनम्रता के साथ अपनी भावनाओं को सटीक एवं ओजस्वी वाणी में अभिव्यक्त करती है -

" भवादृशेषुप्रमदाजनोदितं
भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां,
निरस्तनारी समया दुराधयः। " (1/28)

द्रौपदी कूटनीति निपुण है , अतः उसकी स्पष्ट मान्यता है कि कपटी के साथ कपट का ही आचरण किया जाना चाहिए। अन्यथा कपटी लोग अवसर पाकर सज्जन व्यक्तियों को समाप्त कर देते हैं।

" व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। " (1/30)

दौपदी स्वाभिमानी स्त्री है , वह युधिष्ठिर से स्पष्ट शब्दों में कहती है कि आपके अलावा कोई भी ऐसा राजा नहीं होगा , जो कुलवधू के तुल्य राज्यलक्ष्मी का शत्रुओं द्वारा अपहरण करवाये तथा फिर भी शान्त बैठा रहे –

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलभिमानी कुलजां नराधिपः।

परैस्त्वादन्यः क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ।। " (1/31)

द्रौपदी युधिष्ठिर पर सीधा दोषारोपण करती है कि तुमने स्वयं अपने हाथों राज्य का परित्याग कर दिया है , न कि वह शत्रु ने जीता है । द्रौपदी स्वयं की पीड़ा की चर्चा न करके भीम, अर्जुन एवं युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों की दुर्योधन के कपटपूर्ण व्यवहार से हुई दुर्दशा का चित्र खींचती हुई , उन्हें उचित प्रतिकार के लिए प्रेरित करती है । वह योद्धा भाईयों की दुर्गति का कारण दुर्योधन की कायरता को मानती है । द्रौपदी राजनीति धर्मशास्त्र, आचारशास्त्र आदि में अत्यन्त प्रवीण है , अतः युधिष्ठिर से एक कूटनीतिज्ञ के समान स्पष्ट शब्दों में कहती है कि राजनीति में सन्धि भंग करना कोई दोष नहीं हैं । विजयेच्छु राजा अवसर पाकर किसी भी बहाने से पूर्व में की गई सन्धि आदि को तोड़ देते हैं ।

" अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा
विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि । " (1/45)

वह भाग्यजनित विपत्ति को दुःख नहीं मानती , किन्तु शत्रुकृत अपमान को सहन करना कायरता मानती है । वह महाराज युधिष्ठिर की स्थिति को मनस्विगर्हित बतलाती है । वह युधिष्ठिर से आवेश के वशीभूत होकर यहाँ तक कह देती है कि यदि आप अब भी शान्ति नीति की रट लगाए रहते हैं, क्षत्रियोचित पराक्रम प्रदर्शित नहीं कर सकते हैं तो यह राजचिन्ह रुपी धनुष को छोड़कर जटाधारी तपस्वी बन जाइये और शान्ति के साथ हवन कीजिए -

" विहाय लक्ष्मीपति लक्ष्मकार्मुकं,
जटाधरः सन् जुहूधीह पावकम् ।। " (1/ 44) द्रौपदी युधिष्ठिर में युद्ध के प्रति उत्साह नहीं देखकर व्यथित होती है, लेकिन युधिष्ठिर की धर्मपत्नी है जीवन संगिनी है , अतः अन्त में उन्हें शुभकामना प्रदर्शित करती हुई कहती है कि प्रातःकालीन सूर्य के समान उन्हें भी राज्य लक्ष्मी पुनः प्राप्त होवे । इस प्रकार द्रौपदी ओजस्वी व्यक्तित्व की धनी तथा प्रेरणा और पराक्रम की जीवन्त मूर्ति है । द्रौपदी का व्यक्तित्व और चरित्र ही इस सर्ग का प्राण है। निस्सन्देह द्रौपदी के व्यक्तित्व के चित्रण में भारवि ने श्लाघनीय कौशल का परिचय दिया है ।

(3) वनेचर - भारवि गुप्तचर संस्था को अति महत्त्वपूर्ण मानते थे । उन्होंने गुप्तचरों को शासकों का नेत्र घोषित किया है । वे गुप्तचरों में कर्त्तव्यनिष्ठा , कार्यनिपुणता , निर्भयता एवं स्पष्टवादिता आदि गुण आवश्यक मानते हैं । उनके मतानुसार शासक अपने अमात्यों पर पूर्ण विश्वास करें वे शासकों के हित को महत्त्व देते हुए सही परामर्श दें, तभी शासनतन्त्र सुचारु रुप से चल सकता है । प्रथम सर्ग भी वनेचर रुपी गुप्तचर की उक्तियों से प्रारम्भ होता है । वह दुर्योधन की गतिविधियों का पता लगाने के लिए युधिष्ठिर द्वारा भेजा गया था । वनेचर में गुप्तचर सम्बन्धी समस्त गुण विद्यमान थे । अतएव उसने ब्रह्मचारी के वेश में हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन के सभी विचारों, उसकी योजनाओं, कार्यो और उद्देश्यों को जान लिया था और युधिष्ठिर को बतला दिया था । वनेचर स्वामिभक्त था, उसे यह ज्ञात था कि यथार्थ कटु होता है तथा दुर्योधन संबंधी योजनाएँ एवं विचार युधिष्ठिर को बताने पर उन्हें कुछ क्षणों के लिए बुरा भी लगेगा, लेकिन राजा एवं राज्य दोनों के कल्याण के लिए वह युधिष्ठिर को सत्य से अवगत कराता है,

क्योंकि वह जानता था कि -

(हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः) (1/4)

वह युधिष्ठिर का सच्चा हितैषी था इसी कारण उसमे स्वामी को अंधकार में रखना उचित नहीं समझा, क्योंकि वह जानता था कि यदि वास्तविकता को बतलादिया जायगा तो महाराज युधिष्ठिर उसका यथोचित प्रतीकार करने में समर्थ हो सकते है।

न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं
प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषाहितैषिणः । (1/2)

वनेचर अति विनम्र भी है इसी कारण वह आपको अबोधविक्लव मानता है । उसके द्वारा जो दुर्बोध नीति मार्ग जाना गया वह युधिष्ठिर का ही प्रभाव मानता है अर्थात् अपने कार्य की सफलता का श्रेय भी वह युधिष्ठिर को ही देता है । वनेचर नीतिविद् , बुद्धिमान् एवं अपने कार्य में निष्णात है इसी कारण उसने अपने कपट वेश में दुर्योधन की समस्त भावी योजनाओं का पता लगा लिया । वह युधिष्ठिर के समक्ष वृतान्त ही निवेदन नहीं करता , अपितु सच्चे सेवक की भाँति परामर्श भी देता और दुर्योधन का प्रतिकारकरने हेतु प्रेरित भी करता है । स्पष्ट वक्ता होने पर भी शिष्टता का उल्लंघन नहीं किया । सम्पूर्ण वृतान्त निवेदन करते समय उसकी भाषा, सौष्ठव एवं अर्थगरिमा से पूर्ण थी, उसका प्रत्येक वाक्य सप्रमाण था । इस प्रकार वनेचर स्वामिभक्त, स्पष्ट वक्ता, सत्यवक्ता, नीतिविद् , व कर्त्तव्यपरायण सेवक है एवं चाटुकारिता से रहित है । प्रथम सर्ग में भारवि ने वनेचर का चरित्र एवं व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली ढंग से किया है ।

(4) दुर्योधन - यद्यपि दुर्योधन इस महाकाव्य में एक प्रतिनायक के रुप में है , तथापि प्रथम सर्ग में सुयोधन की शासन नीति के वर्णन के माध्यम से आदर्श राजा का चित्र प्रस्तुत किया गया है। शासक का अपने परिजनों पर पूर्ण विश्वास, सामदानादि का समुचित प्रयोग , धार्मिक कृत्यों के माध्यम से लोक सामान्य के बीच उदात्त छवि प्रस्तुत करना तथा जनकल्याणकारी कार्यो का सम्पदान जैसे गुण है, जो उसे लोकप्रिय बना देते हैं। इसी प्रसंग में कवि ने यहाँ भी बताया है कि कई बार कुटिल शासक भी जनकल्याणकारी कार्यो का जाल बिछाकर जनता को आकृष्ट कर लेते हैं। केवल सैन्य शक्ति या छलबल से प्राप्त सत्ता भी तब तक चिरस्थायी नहीं होती , जब तक कि जनता को अनुकूल नहीं बना लिया जाता इसलिए तो सुयोधन सिंहासनारुढ़ होते हुए भी कूटनीतिक कौशल से जनता के ह्रदय को जीतने का प्रयास करता है -

" दुरोदरच्छद्म जितां समीहते ,
नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ।। " (1/7)

भारवि की मान्यता है कि शासन की स्थिरता के लिए राज्य की तीनों शक्तियों मन्त्रशक्ति, प्रभुशक्ति तथा उत्साहशक्ति में सन्तुलन आवश्यक होता है। प्रत्येक कार्य की सफलता के लिए योजना (मन्त्र शक्ति) क्षमता (प्रभुत्त्व) और उत्साहपूर्ण क्रियान्वयन (उत्साहशक्ति) की आवश्यकता होती है । इन तीनों में से किसी एक पक्ष के दुर्बल होने से अपेक्षित सफलता नहीं मिलती , इसलिए दुर्योधन सेवकों के साथ मित्रों जैसा व्यवहार करता था मित्रों के साथ बन्धुजनों

जैसा तथा बन्धुजन के साथ राज्याधिकारी जैसा व्यवहारकरता था। उसके सैनिक तेजस्वी और युद्व कौशल में पूर्णतः निपुण थे। वह उनका पूर्ण सम्मान करता था अतएव वे भी प्राणार्पण से उसकी तथा उसके राज्य की रक्षा करते थे। सभी राजा उसके गुणों से प्रभावित थे। अतः उसके गुणों के प्रति अनुराग के कारण उसकी आज्ञा को माला के समान शिरोधार्य करते थे।

" गुणोनुरागेण शिरोभिरूह्यते
नराधियैर्माल्यमिवास्य शासनम्।। " (1/21)

प्रजाओं को धन धान्य से पूर्ण बनाने के लिए उसने कृषि संबंधी सभी सुविधाएँ दे रखी थीं। सिंचाई के कृत्रिम साधन देश में उपलब्ध होने से कुरु जनपद धन धान्य से सम्पन्न था। उसके राज्य में गुणों से द्रवीभूत बनी हुई पृथ्वी स्वयं उसके लिए धन उगलती थी –

" स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता
वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी। " (1/18)

धर्म, अर्थ और काम का वह समय विभागानुसार सेवन करता था। वह जितेन्द्रिय बनकर मनु आदि स्मृति बेधित न्याय एवं दण्ड का प्रयोग करता था। वह सदा पक्षपातरहित होकर दण्ड न्याय का पालन करता था इस प्रकार न्याय के क्षेत्र में शत्रु एवं पुत्र के मध्य भी जैसा धर्म गुरु निर्देश देते थे वह न्याय करता था -

" गुरुपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा,
निहन्ति दण्डेन स धर्म विप्लवम्। " (1/13)

इस प्रकार दुर्योधन एक योग्य, न्यायी एवं कुशल प्रशासक के गुणों से सम्पन्न है।

भाषा- शैली - महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान रत्नों में से एक हैं। उसका महाकाव्य वृहत्त्रयी का प्रथम रत्न है। भारवि की भाषा उदात्त तथा हृदय को शीघ्र प्रभावित करने वाली है। वह कोमल भावों को प्रकट करने में उतनी ही समर्थ है, जितनी उग्र भावों के प्रकाशन में। भाषा तथा शैली के विषय में भारवि ने अपने आदर्श का संकेत इस प्रख्यात पद्य में किया है -- (किरात 14/3)

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुति प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदां सरस्वती ।।

पुण्यशाली व्यक्तियों की प्रसन्न तथा गम्भीर पदों से युक्त होती है। उसके सुन्दर अक्षर पृथक् रुप रखते हैं तथा कानों को प्रसन्न करते हैं वह शत्रुओं के भी हृदयों को प्रसन्न करती है। प्रसन्न का लक्ष्य शाब्दी सुष्ठुता से है तथा गम्भीर का तात्पर्य अर्थ की गम्भीरता से है। भारवि की शैली का सही मर्म है। वह प्रसन्न होते हुए भी गंभीर है। मित्र आलोचकों को प्रसन्न करने के साथ ही दुष्ट आलोचकों को भी आवर्जित करती है। फलतः प्रसन्नगम्भीर पदा सरस्वती भारवि की भाषा तथा शैली का द्योतक सहनीय मंत्र है। भारवि की भाषा में प्रौढ़ता ओज प्रवाह शक्तिमत्ता है। उसका शब्द संचय भावानुकूल है। भावानुसार कहीं प्रसाद हैं, कहीं माधुर्य और कहीं ओज। भाषा में शैथिल्य का नितान्त अभाव है । मनोभाव, उदात्त, कल्पनाओं और गम्भीर विचारों का एक रत्नाकर ही है। अर्थ गाम्भीर्य और अर्थ गौरव की जितनी प्रशंसा की जाए, वह थोड़ी ही है।

पद-पद पर अर्थ गौरव उसके वैदुष्य और गम्भीर चिन्तन का परिचायक है। भारवि ने प्रायः सभी रसों का अत्यन्त कुशलता के साथ प्रयोग किया है। श्रृंगार और वीर रस उसके अतिप्रिय रस हैं। इनके भेद और उपभेदों तक का लालित्यपुर्ण भाषा में प्रयोग किया है। उसका अलंकारों का प्रयोग दर्शनीय है।

15 वें सर्ग में चित्रालंकारों की बहुरंगी छटा इन्द्रधनुष को भी निष्प्रभ कर देती है। कहीं एक ही अक्षर वाले श्लोक हैं तो कहीं दो अक्षर वाले , कहीं पादादियमक हैं तो कहीं पादान्तादियमक कहीं,गोमूत्रिका-बन्ध है तो कहीं सर्वतोभद्र, कहीं एक ही श्लोक सीधा और उल्टा एक ही होता है तो कहीं पूर्वार्ध और उत्तरार्द्ध एक ही हैं। कहीं दो पद समान हैं तो कहीं चारों पद एक ही हैं। कहीं आद्यन्त यमक है तो कहीं श्रृंखला यमक। कहीं निरोष्ठयवर्ण श्लोक हैं तो कहीं अर्धभ्रमक, कहीं द्वयर्थक और त्र्यर्थक श्लोक हैं तो कहीं चार अर्थ वाले भी श्लोक हैं। वस्तुतः भारवि संस्कृत काव्यों में रीति शैली के जन्मदाता हैं। उसके ग्रन्थ के आरम्भ में " श्री " शब्द तथा सर्गान्त श्लोकों में " लक्ष्मी"शब्द का प्रयोग उसकी प्रमुख विशेषता है। माघ ने शिशुपालवध में इसी शैली का अनुकरण किया है। भारवि का प्रकृति चित्रण अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति का चित्रण अत्यन्त मनोरम और प्रशंसनीय है। उन्होनें विविध छन्दों का प्रयोग करके अपनी छन्दोयोजना संबंधी दक्षता प्रदर्शित की है। इसलिए मल्लिनाथ ने इनके काव्य सौन्दर्य को " नारिकेलफलसंमितम " माना है। जो बाहर कठोर, किन्तु अन्दर अत्यन्त मधुर है। वेद उपनिषद् दर्शन पुराण, नीति, राजनीति, ज्योतिष, भूगोल, कृषि और कामशास्त्र आदि से संबद्व वर्णन उसके अगाध पाण्डित्य के सूचक हैं। भारवेऽर्थगौरवम्, भारवेरिव भारवेः, प्रकृतिमधुराभारविगिरिः, आदि सूक्तियाँ वस्तुतः भारवि की गरिमा को प्रकट करती हैं। भारवि ने अर्थगौरव कल्पना और सूक्ष्म विचारों कर मधुर सम्मिश्रण किया है। उसके अपना मन्तव्य निम्नलिखित श्लोक में प्रस्तुत किया है -

स्फुटता न पदैरपाकृता
न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां
न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्॥ (2/26)

पदों में स्पष्टता, अर्थगौरव युक्तता, अनुरुक्तदोष और साकांक्षता गुण का होना अनिवार्य है। भाषा के वैभव का अत्यन्त सुचारु रुप में वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि प्रसाद, माधुर्य और अर्थ गौरव से युक्त वाग्देवी पुण्यात्माओं को ही प्राप्त होती है। वाग्मिता की प्रशंसा में कवि का कथन है कि " अपने मनोगत विचारों को सुन्दर भाषा मे अभिव्यक्त करने वाले व्यक्ति ही सभ्यतम होते हैं, उनमें भी विशेष दक्ष व्यक्ति ही गंभीर भावों को सरल रूप में अभिव्यक्त करने में समर्थ होते हैं। भारवि की उक्तियाँ स्वाभाविकता , व्यंग तथा पाण्डित्य से भरी पड़ी है। द्रौपदी की उक्ति में युधिष्ठिर को तीखे व्यंग्य सुनाने की क्षमता है तो भीम की युक्ति वीरता के घमण्ड से तेज और तर्रार युधिष्ठिर की कायरता पर संकेत करती द्रौपदी कहती है कि (युधिष्ठिर के सिवाय) ऐसा राजा कौन होगा जो अपनी सुन्दर पत्नी के समान गुणानुरक्त (सन्धि आदि गुणों से युक्त)

कुलीन राज्यलक्ष्मी को स्वयं अनुकूल साधन से युक्त तथा कुलाभिमानी होते हुए भी दूसरो के हाथों छिनती हुई देखे। यथा -

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलभिमानी कुलजां नराधिपः।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेन्मनोरमामत्मधूकमिव श्रियम्।। (1 /31)

अब तक के विवेचन और उद्धृत पदों से यह सिद्ध हो जाता है कि कालिदास जैसा प्रसाद गुण भारवि में नही मिलता। भारवि की शैली माघ की भाँति विकट समासान्त पदावली का आश्रय नहीं लेती, तथापि कालिदास जैसी ललित वैदर्भी भी नहीं। भारवि का अर्थ कालिदास के अर्थ की तरह अपने आप सूखी लकड़ी की तरह प्रदीप्त नहीं हो उठता। कालिदास की कविता में द्राक्षापाक है, अंगूर के दाने की तरह मुँह में रखते ही रस की पिचकारी फूट पड़ती है; जबकि - भारवि के काव्य में नारिकेल पाक है, जहाँ नारियल को तोड़ने की सख्त मेहनत के बाद उसका रस हाथ आता है कभी-कभी तो उसे तोड़ते समय इधर-उधर जमीन पर बह भी जाता है और उसमें से बहुत थोड़ा बचा खुचा सहृदय की रसना का आस्वाद बनता है।

भारवि कालिदास की अपेक्षा पाण्डित्यप्रदर्शन के प्रति अधिक अनुरक्त हैं। वे अपने व्याकरण ज्ञान का स्थान-स्थान पर प्रदर्शन करते हैं। उन्हें कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के प्रयोग बड़े पसन्दहैं। भारवि में ही सबसे पहले काकु वक्रोक्ति का और विध्यर्थ में निषेधद्वय का प्रयोग अधिक पाया जाता है। इसके साथ ही अतीत की घटना का वर्णन करने में भारवि खास तौर पर परोक्षभूते लिट् का प्रयोग करते हैं। अन्त में हम डॉ. डे के साथ यही कहेंगे - भारवि की कला प्रायः अत्यधिक अलंकृत नहीं है, किन्तु आकृति सौष्ठव की नियमितता व्यक्त करती है। शैली की दुष्प्राप्य कान्ति भारवि में सर्वथा नहीं हैं,ऐसा कहना ठीक नहीं होता; किन्तु भारवि उसकी व्यंजना अधिक नहीं कराते। भारवि का अर्थगौरव जिसके लिए विद्वानों ने उसकी अत्यधिक प्रशंसा की है, उसकी गम्भीर अभिव्यंजना शैली का फल है,किन्तु यह अर्थगौरव एक साथ भारवि की शक्ति तथा भावपक्ष की दुर्बलता दोनों को व्यक्त करता है। भारवि की अभिव्यंजना शैली का परिपाक अपनी उदात्त स्निग्धता के कारण सुन्दर लगता है। उसमें शब्द तथा अर्थ के सुडौलपन की स्वस्थता है, किन्तु महान् कविता की उस शक्ति की कमी है, जो भावों की स्फूर्ति तथा हृदय को उठाने की उच्चतम क्षमता रखती हैं।

रस परिपाक - लक्षण ग्रन्थकारों ने श्रृंगार और वीर रस को ही प्रधान रूप से महाकाव्यो में रखने का निर्देश दिया है, " एक एव भवेदंगी श्रृंगारों वीर एव च। " इसी आधार पर महाकवि ने अपने महाकाव्य में वीर अंगीरूप में अभिव्यक्त किया है। वीर रस प्रधान होने पर भी उसके महाकाव्य में अन्य रसों का यथास्थान अंगरूप में चित्रण हुआ है। इसमें भी श्रृंगार रस ही मुख्यतः देखा जाता है। भारवि के टीकाकार मल्लिनाथ ने भी किरातार्जुनीयम् में प्रधान रस वीर को ही स्वीकार किया है।

" श्रृंगारदि रसोअंगमत्र विजयी वीरः प्रधानो रसः। "

भारवि के भाव और रस के अपूर्य तादात्मय को लक्ष्य कर श्री शारदातनय की उक्ति तादात्मयं भावरसयोः भारविः स्पष्टमुक्तवान् " भी दर्शनीय है। इसलिए काव्यरस मर्मज्ञ श्रीकृष्ण कवि ने

लिखा है कि भारवि के काव्य में अर्थगौरव तो है ही , पर साथ ही इसकी रसपेशलता भी अपूर्व है, सम्पूर्ण काव्य से ओत-प्रोत है। अतएव यह काव्य उत्तरकालीन कवियों के लिए उपजीव्य बन सका है।

प्रदेशवृत्तापि महान्तमर्थ प्रदर्शयन्ती रसमादधानां
सा भारवेः सत्यथदीपिकेव रम्याकृतिः कैरिव नोपजीव्या।

यद्यपि अर्थ गौरव और रस योजना इन दोनों का एक साथ प्रयोग कठिन होता है। जहाँ कवि का ध्यान अर्थ वैशिष्टय पर ही रहता है, वहाँ रसाभिव्यक्ति दब जाती है, जहाँ रसाभिव्यक्ति प्रधान लक्ष्य बन जाता है, वहाँ अर्थगौरव नहीं रह पाता। परन्तु भारवि में यह अपूर्व क्षमता है कि उन्होंने दोनों का ही कुशलतापूर्वक निर्वाह किया है।

किरातार्जुनीयम् में वीर रस का प्राधान्य प्रथम सर्ग में ही आरम्भ हो जाता है। जहाँ भीम अपने शान्तिप्रिय ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को अनेक प्रकार से समझाने का प्रयास करते है। वे कहते हैं कि आपको शत्रुओं की भारी शक्ति से अपनी पराजय की आशंका नहीं करनी चाहिए। आपके अनुज इन्द्र के समान तेजस्वी हैं , कौरवों में ऐसा कोई वीर नहीं है जो उन्हें पराजित कर सके इस प्रकार इस पद्य में वीर रस की अभिव्यक्ति तो है ही , पर व्यंजना के द्वारा यहाँ अर्थगौरव भी स्पष्ट है कि जब अनुज ही इतने शक्तिशाली हैं तो युधिष्ठिर की शक्ति और पराक्रम की बात ही क्या ?
इसी प्रकार अन्यत्र भी वीर रस और अर्थ साथ- साथ देखे जा सकते हैं।

प्रथम सर्ग में द्रौपदी की उक्तियों के माध्यम से वीर रस अभिव्यक्त होता है। वह कहती है कि सोत्साह व्यक्ति के पास लक्ष्मी स्वयं आती है। वीर पुरूष के वश में लोग स्वयं हो जाते हैं। परन्तु जो उत्साही नहीं होता , उसका न तो स्वजन ही आदर करते हैं और न शत्रु ही। वह सर्वत्र निराहत को ही शोभा देता है इत्यादि। भारवि ने वीर और श्रृंगार रसों के वर्णन में अतिशय सिद्धहस्तता दिखाई है सर्ग 8 और 9 में संभोग श्रृंगार का सही वर्णन है। सर्ग 13 से 17 तक युद्ध वर्णन में वीर रस का परिपाक है। जलक्रीड़ा के वर्णन में श्रृंगार रस का चित्रण हुआ है। पति ने पत्नी का हाथ पकड़ा और प्रेम विभोर पत्नी के वस्त्र शिथिल हो गए और आर्द्र मेखला ने उन्हें रोक कर लज्जा-संवरण किया –

विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भासि
प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः।
सखीव काञ्ची पयसा धनीकृता।
बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम्।। (8/51)

अन्त में भारवि के श्रृंगारिक वर्णनों से स्पष्ट होता है कि भारवि में श्रृंगार रस की वह उदात्तता एवं उत्तमता नहीं हैं जो श्रृंगार रस के एकमात्र कवि कालिदास में देखी जाती है। भारवि का श्रृंगार कहीं-कहीं अश्लील एवं अमर्यादित भी हो गया है और वह विलासवृत्ति एवं कामुकता को उभारने वाला है। फिर भी भारवि के काव्य में रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है, इसमें कोई संशय नहीं हैं।

अन्य विशेषताएँ - भारवि ने काव्य के माध्यम से नैतिक गुणों का प्रकाशन आवश्यक माना है

इसका पालन अपने काव्य में इन्होंने जम कर किया है। इस विषय में उनकी प्रौढ़ि इतनी प्रबल है कि विद्वद्वर्ग उनकी इन सुक्तियों को अपनी जिव्हा पर रखकर वाणी को विभूषित करने में गौरव का अनुभव करते है। उदाहरणार्थ प्रथम सर्ग की नीति विषयक सूक्तियाँ है।

(1) हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।
(2) वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः ।
(3) न वंचनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः ।
(4) सुदुर्लाभाः सर्व मनोहरां गिरः।
(5) स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम् ।
(6) हितान्न यः संश्रृणुते सः किं प्रभुः ।
(7) सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेश्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ।
(8) गुणानुरोधेन बिना न सत्क्रिया
(9) अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता ।
(10) ब्रजान्ति ते मूढ़धियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
(11) अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना, न जातहार्देन न विद्विषादरः ।
(12) विचित्र रुपाः खलु चित्तवृत्तयः।
(13) परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् ।
(14) व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः शमेंन सिद्विं मुनयो न भुभृतः ।

इस प्रकार की नैतिक उक्तियों का भण्डार है किरातार्जुनीय। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि इसी प्रकार की व्यवहारपरक बातों से ही भारवि की कृति भरी पड़ी है उसमें ह्रदय को आवर्जित करने वाले काव्य तत्व नहीं हैं , अथवा बहुत कम है । भारवि की कविता कोमल भावों को भी अभिव्यक्त करने में पुर्ण सक्षम है । महाभारत एवं शिवपुराण की स्वल्प नीरस कथाओं को गुच्छे की भाँति अट्ठारह सर्गों में विस्तृत कर उसे आम्र-मंजरी की मधुर एवं आकर्षक बनाना भारवि की काव्यकला का ही वैशिष्ट्य है। इन्द्र अप्सराओं तथा गन्धर्वो को अर्जुन की तपस्या में विघ्न करने के लिए भेजते है । वे मार्ग में ही सुषमा पर मुग्ध हो पुष्पावचय एवं जलविहार में काल यापन करते हैं (अष्टम सर्ग) । चन्द्र की चन्द्रिका में रति क्रीड़ा के सुख का अनुभव करते हैं (9 सर्ग) तथा प्रभात होने पर अपने कार्य की ओर अग्रसर होते हैं (10 सर्ग)। बाह्य दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि भारवि ने यह सब अनावश्यक विस्तार अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए किया है। काम शास्त्र विषयक अपने ज्ञान के प्रकाशन के लिए किया है।

अतः इतना लम्बा यह प्रसंग अनावश्यक है तथा काव्य धारा को बोझिल बनाने वाला है। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाए तो यह प्रासंगिक है और अर्जुन की महत्ता ,दृढ़ता को प्रकाशित करने के लिए आवश्यक भी है । उपर्युक्त वर्णनों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महाकवि भारवि का महाकाव्य अपना अलग स्थान रखता है । उनके महाग्रन्थ में काव्यशास्त्रोक्त नियमों का पूर्णतया निर्वाह हुआ है । व्याकरण के नियमों के साथ-साथ काव्यनियमों का ऐसा सुन्दर

निर्वाह कम काव्यों में दिखाई देता है। इतना सब होते हुए भी भारवि की कविता में वह माधुरी सरलता सरसता तथा स्वाभाविकता नहीं है जो कालिदास को " कविकुलगुरू " बनाती है। लेकिन कालिदास और अश्वघोष की अपेक्षा भारवि का व्यक्तित्व दर्शन सर्वथा स्वतन्त्र प्रतीत होता है। इसका बड़ा भारी कारण यह है कि भारवि ने वीर रस का बड़ा हृदयग्राही चित्रण और अलंकृत काव्य शैली का सफल वर्णन किया है। अर्थ गौरव भारवि की सबसे बड़ी विशेषता है। भारवि का व्यावहारिक पक्ष सबल है, मनोवैज्ञानिक पक्ष दुर्बल है। यह कवि अलंकृत शैली का कवि है, विचित्र मार्ग का आचार्य है। यदि मल्लिनाथ जैसा व्याख्याता आचार्य न होता तो कदाचित् भारवि के काव्य का रसास्वाद बहुत ही कम लोग कर पाते। वस्तुतः भारवि ने काव्य के क्षेत्र में विचित्र मार्ग नामक एक एक ऐसे वृक्ष का आरोपण किया जो आगे चलकर खूब फूला-फला। इस प्रकार यह कवि इस प्रकार की काव्य विधा का प्रतिष्ठापक , प्रर्वतक आचार्य होने के गौरव का यशस्वी भागीदार है।

प्रथम सर्ग के आधार पर भारवि का अर्थ गौरव

संस्कृत के आलोचना जगत में भारवि अपने अर्थ गौरव के लिए सुविख्यात हैं। स्वल्प शब्दों में अधिक अर्थ को भर देना ही अर्थगौरव की महत्ता हैं। भावाभिव्यक्ति के लिए समुचित अल्प शब्दों का प्रयोग भारवि की निजी विशेषता है। भारवि का अर्थ गौरव उनकी गम्भीर अभिव्यजंना शैली का फल है और इस शैली में शब्द तथा अर्थ दोनों का समुचित सामन्जस्य है। भारवि गम्भीर व्यक्तित्व के धनी हैं। उनकी कविता में भावों की उदात्तता है। मानव हृदय के भीतर प्रवेश कर उसके अन्तराल में पनपने वाले भावों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उनके प्रकटीकरण की महनीय शक्ति का अभाव उसकी काव्यकला में भले ही विद्यमान हो परन्तु लोकसम्बद्ध तथ्यों के विवरण देने में वे पूर्ण समर्थ हैं। किरातार्जुनीयम् में अर्थगौरव की मनोहरता श्लेषालंकार के अभ्युदय के कारण यत्रःतत्र देखने को मिलती है। श्लेषानुप्राणित उपमा के लिए अर्थगौरव से परिपूर्ण निम्न श्लोक अत्यन्त प्रसिद्व है -

कथा प्रसडगेन जनैरुदाहृताइनुस्मृताखण्डलसुनूविक्रमः।
तवाभिधानाद् व्यथतो नताननः सुदुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः ।। (1/23)

इस श्लोक में कतिपय श्लिष्ट शब्द अर्थ गौरव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। (1) तवाभिधावात् आपका नाम लेने से, त (ताक्ष्र्य- गरुड़) तथा व (वासुकि) के नाम को धारण करने वाला। "नामैकदेशग्रहणेन नामग्रहणम् " अर्थात् नाम के एक देश के ग्रहण से पूरे नाम का बोध हो जाता है। इस न्याय से " त " अक्षर ताक्ष्र्य (गरुड़) तथा " व " अक्षर वासुकि का वाचक माना गया है। (2) आखण्डलासुनूविक्रमःइन्द्र पुत्र अर्जुन के पराक्रम कर स्मरण करने वाला। इन्द्र के सुनू (अनुज-विष्णु) के वि (पक्षी- गरुड़) के क्रम-पादविक्षेप का स्मरण करने का भाव यह है कि सभंगश्लेष की महिमा से यहाँ कम शब्दों के द्वारा अधिकाधिक अर्थो का बोध कराया जा रहा है। और सही है इस श्लोक के अर्थ का सौन्दर्य भारवेऽर्थ गौरवम् की उक्ति प्रथम सर्ग में पूर्णतया चरितार्थ होती है। प्रथम सर्ग के द्वितीय श्लोक में हमें अर्थ गौरव दिखाई देता है जब वनेचर

अपने स्वामी के समक्ष यथार्थ बात प्रस्तुत करते हुए व्यथित नहीं होता है। इस प्रसंग में कवि ने जो उक्ति प्रयुक्त की है वह देखने में बहुत संक्षिप्त है किन्तु अर्थ गाम्भीर्य से ओतप्रोत है।

" न हिं प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिण।

सेवकों को ही कर्त्तव्यपरायण होना चाहिए नहीं है। राजाओं का भी कर्त्तव्य है कि वे अपने सेवकों की हितकारी बातें सुनें, भले ही प्रिय हों या अप्रिय। क्योंकि हितकारी एवं प्रिय लगने वाली बात बहुत ही कम सुनने को मिलती है। वह वस्तुतः दुर्लभ है कवि की सूक्ति सारगर्भित हैं -

" अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा
हिंत मनोहारि च दुर्लभं वचः ।। "

प्रथम सर्ग के आठवें श्लोक में वनेचर कहता है दुर्योधन राज्य- सिंहासनस्थ होकर भी वन में रहने वाले व भ्रष्ट राज्य वाले आपसे पराजय की आशंका करता रहता है। इस प्रसंग में कवि ने जो सूक्ति की है, वह अर्थ गौरव का सुन्दर निदर्शन है।

" वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः। "

अर्थात् ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला साधुजनों का विरोध भी दुष्टों की संगति से कहीं अच्छा होता है। 23वें श्लोक में वनेचर कहता है कि दुर्योधन समुद्र पर्यन्त विस्तीर्ण समृद्धशाली निष्कण्टक राज्य पर शासन करता हुआ भी भविष्य आने वाली विपत्तियों की चिन्ता करता ही रहता है। सच है कि बलवान से विरोध करना अन्त में दुःखद ही होता है।

" अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता। "

द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि जो व्यक्ति सफल क्रोधवाला होता है, उसके सभी व्यक्ति स्वतः वशवर्ती हो जाते हैं, किन्तु जो व्यक्ति क्रोधरहित होता है, उसका आत्मीयजन आदर नहीं करते और शत्रु उससे भयभीत नहीं होते अर्थात् क्रोध शून्य व्यक्ति का कहीं भी सम्मान नहीं होता

" अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना।
न जातहार्देन न विद्विषादरः ।। "

क्रोध यद्यपि अरिषड्वर्ग में होने के कारण निन्दनीय है, किन्तु राजाओं को समयानुकूल उसें अपनाना ही चाहिए, यह भाव व्यक्त है। इसी प्रकार द्रौपदी " शान्ति से सफलता का मार्ग मुनियों का है, राजाओं का नहीं। " इस बात का उल्लेख करती हुई युधिष्ठिर से कहती है - आप शान्ति का मार्ग का त्याग कर शत्रुओं के वध हेतु अपने उसी पूर्व तेज धारण करने के लिए प्रसन्न हो जाएँ , क्योंकि इच्छा रहित मुनिजन काम , क्रोध आदि छः शत्रुओं पर कान्ति से विजय प्राप्त करने में सफल होते हैं , राजा लोग नहीं।

" व्रजन्ति शत्रूनवधूय निस्पृहीः शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः। "

इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ग में छोटी-छोटी सूक्तियों में गम्भीर और विपुल भाव कवि ने भर दिया है। एक-एक शब्द साभिप्राय है। उपर्युक्त प्रसंगो से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महाकवि भारवि अर्थ गाम्भीर्य के परमाचार्य हैं, कवि शिरोमणि है। वर्णानात्मक और शैली तो मानो कवि भारवि की सहचरी है। इस सम्पूर्ण सर्ग शब्द वैचित्रय, अर्थगौरव, राजनीति वर्णन कौशल आदि के

उदाहरण बहुलता से उपलब्ध हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न–

1. कालिदास और अश्वघोष के बाद तृतीय उल्लेखनीय कवि कौन है।
2. भारवि दक्षिण भारत के किस नरेश के सभा पण्डित थे।
3. भारवि के माता-पिता का क्या नाम था।
4. किरातार्जुनीयम् काव्य को कितने सर्ग में सृजन किया गया है।
5. द्यूत क्रिड़ा में हारने के पश्चात् युधिष्ठिर अपने अनुजों के साथ निवास करने के लिए कहाँ रहने लगे थे।
6. भगवान व्यास का आगमन किस सर्ग में होता है।
7. शिव से आशीर्वाद स्वरूप में अर्जुन को क्या प्राप्त हुआ।
8. किरातार्जुनीयम् के नायक कौन है।
9. भारवि ने किस वर्ण से लेकर किस वर्ण के छन्दोंपर पूर्णधिकार प्राप्त किया था।
10. किरातार्जुनीयम् के नायिका कौन है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) भारवि की पत्नी

(क) रसकवती (ख) सुशीला

(ग) अवन्ति (घ) द्रौपदी

(2) पितृघातरूपी घोर मानस पातक के लिए भारवि ने प्रायश्चित किया

(क) पिता के सेवा से (ख) ससुर की गाय चरा के

(ग) ससुर के सेवा से (घ) माँ की सेवा से

(3) दीपशिखा कालिदास की भाँति भारवि की भी संज्ञा थी

(क) अमरकीर्ति (ख) स्थलकमलिनी

(ग) आपपत्र (घ) काव्यप्रेमी

(4) भारवि के ससुर थे।

(क) भोज (ख) विष्णुवर्धन

(ग) श्रीधर (घ) चन्द्रकीर्ति

(5) प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में शब्द का प्रयोग किया है

(क) सरस्वती (ख) पार्वती

(ग) लक्ष्मी (घ) राधारानी

(6) सर्ग में चित्रालंकारों की बहुरंगी छटा इन्द्रधनुष की कीर्ति को भी निष्प्रभ कर देती है।

(क) 15 (ख) 10

(घ) 13 (घ) 8

(7) जल क्रीड़ा के वर्णन में सुन्दर चित्रण हुआ है

(क) संभोग श्रृंगार (ख) श्रृंगार रस

(घ) वीर रस (घ) काव्य रस

(8) सौत्सह व्यक्ति के पास लक्ष्मी स्वयं आती है, उक्त वचन किसने कहाँ

(क) भारवि (ख) अर्जुन

(ग) कालिदास (घ) द्रौपदी

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से जाना कि भारवि का व्यक्तित्त्व एवं कृतियों का विस्तृत परिचय क्या है इसके विषय में समग्र रूप से वर्णन किया गया है। भारवि के समय के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि इनका समय कालिदास के बाद होना चाहिए। अवन्तिसुन्दरी कथा के आधार पर यह सिद्ध होता है कि भारवि दक्षिण भारत के रहने वाले थे वह विष्णुवर्धन के राज्य में सभा पण्डित थे। विष्णुवर्धन का शासन काल लगभग 615 ई. का माना जाता है। भारवि की मुख्य कृति किरातार्जुनीयम् है। अवन्ति सुन्दरी कथा के सम्पादक पण्डित रामकृष्ण कवि ने इन्हीं दामोदर के साथ भारवि की एकता मानी है अर्थात् उनकी सम्मति में भारवि ही आचार्य दण्डी के चतुर्थ पुरुष (प्रपितामह) थे, परन्तु जिस पद्य के आधार पर यह अभिन्नता मानी जाती है उसके पाठ अशुद्ध होने के कारण इस सिद्वान्त को अब बदलना पड़ा है। भारवि दण्डी के प्रपितामह नहीं थे प्रत्युत प्रपितामह के मित्र थे , क्योंकि भारवि की सहायता से ही दामोदर राजा विष्णुवर्धन की सभा में प्रविश्ट हुए। जो कुछ हो , इतना तो निश्चित है कि भारवि दक्षिण भारत के रहने वाले थे और चालुक्यवंशी नरेश विष्णुवर्धन के सभापण्डित थे। कुछ विद्वानों ने भारवि को त्रावणकोर प्रदेश का निवासी सिद्ध किया है। भारवि का जीवन वृतान्त भी अन्धकारमय है केवल कुछ किवदन्तियाँ ही उनके संबंध में संस्कृत कवियों से सुनी जाती हैं। एक किंवदन्ति उनको धारा नगरी का निवासी तथा राजा भोज का समकालीन बतलाती है। पिता का नाम श्रीधर तथा माता का नाम सुशीला बतलाया गया है। रसिकवती कन्या से उनका विवाह हुआ था जो कि भडौच के निवासी चन्दकीर्ति की पुत्री थी। यद्यपि भारवि के पिता भी उच्चकोटि के विद्वान् थे , पर भारवि उनसे भी बढ़कर थे। सुनते हैं कि इनके पिता अपने पुत्र के वैदुष्य से परिचित होने पर भी सभा में इनका इसलिए तिरस्कार किया करते थे जिससे वे पाण्डित्य बढ़ाने में , शास्त्राभ्यास करने में और दत्तचित् हों ,परन्तु पण्डित समाज में अपनी निन्दा , जिस पर पिता के द्वारा की गई ; सुनकर भारवि मन ही मन जल भुन गए और पिता को मार डालने का निश्चय किया।

1.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
सहसा	एक साथ अर्थात् एकाएक
विदधीत न	निर्णय नही लेना चाहिए
क्रियाम्	क्रिया (कार्य) को

अविवेक बिना जाने हुए
विहाय छोड़कर
दुर्लभ वचः दुर्लभ वाणी

1. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न – (1) - महाकवि भारवि (2) नरेश विष्णुवर्धन (3) श्रीधर - सुशीला (4) अठारह (18) (5) द्वैतवन में (6) द्वितीय सर्ग में (7) पाशुपतास्त्र (8) अर्जुन (9) 8 से 93 तक
(10) द्रौपदी

बहुविकल्पीय प्रश्न– 1-(क) 2- (ग) 3- (ख) 4- (घ) 5- (ग) 6- (क)
7- (ग) 8- (घ)

1. 7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
किरातार्जुनीयम्	भारवि	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

संस्कृत साहित्य का इतिहास . बलदेव उपाध्याय प्रकाशक - शारदा निकेतन , वाराणसी

1. 8 उपयोगी पुस्तकें

1- किरातार्जुनीयम् - भारवि , चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

1. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारवि के समय के विषय में परिचय दीजिये।
2. भारवि की काव्यकला पर प्रकाश डालिए।
3. इस इकाई के आधार पर पात्रों का चरित्र चित्रण कीजिए।